International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 4, Issue 1, January 2017 |

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में नारी चेतना

Dr. Dwarka Prasad Meena

Associate Professor, Dept. of Hindi, SNMT Govt. Girls College, Jhunjhunu, Rajasthan, India

सार

नारियों पर बढ़ते अत्याचारों एवं अमानवीय दुर्घटनाओं के खिलाफ आज पूरे देश में नारी चेतना, विमिन्स लिब और नारी आरक्षण की बात की जा रही है। 'नारी तुम उठो, जागो और लड़ो' का नारा बुलंद किया जा रहा है। नारी चेतना की आज जरूरत क्यों महसूस की जा रही है। आज की नारी की जागरुक सशक्त एवं सचेत रहना चाहिये। इसका मतलब तो यह हुआ कि वर्षों से नारी पिछड़ी हुई एवं सजग नहीं थी और यदि ऐसा है तो उसकी चेतना की सीमा कहां तक होगी? नारी चेतना का मापदंड क्या होगा? क्या उसे मर्यादा लांघ कर स्वच्छंद पाश्चात्य शैली के अनुसार रहना चाहिये? क्या उसे उसके अधिकारों से अवगत कराने के मायने ही चेतना की परिभाषा है और यदि ऐसा है तो अपने दायित्व तथ नारी सुलभ गुणों को त्याग कर सिर्फ अधिकारों तक ही सोच रखना चाहिये?- ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिसके बारे में सोचना चाहिये।

'यत्र पूज्यंते नारी तत्र रमन्ते देवता:' ऐसा कहा जाता है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है परन्तु नारी में भी पूज्यनीय योग्यता होती चाहिये। क्योंकि नारी का मूल रूप उसका चरित्र, उसके संस्कार, लज्जा, प्रेम, स्नेह, ममता, मातृत्व और समर्पण आदि गुणों के साथ ही उसकी चेतना को सराहा जायेगा। उसे अपने मौलिक अधिकार एवं कर्तव्यों के साथ-साथ आधुनिक, सभ्य, सबल होना चाहिए।

परिचय

प्रश्न है आखिर हम नारी चेतना या विमिन्स लिब का नारा देकर नारी को कहां पहुंचाना चाहते हैं। नारी चेतना और नारी स्वतंत्रता- ये दोनों बातें अलग हैं। एक ओर जहां नारी चेतना भारतीय संस्कृति एवं मर्यादा संबंधी है वहीं दूसरी ओर विमिन्स लिब पाश्चात्य धरातल पर नारी की स्वच्छन्दता का हिमायती है। ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक नहीं हैं। यहां तो हम सहज घर-परिवार की नारी की बात कर रहे हैं। नारी के विशेषत: दो ही रूप विवादास्पद हैं एक सास का दूसरा बहू का। यह एक सामाजिक व्यवस्था है। इसमें सबसे ज्यादा चर्चित होता है सास का जिसके अत्याचार एवं कठोर शान के किस्से हम वर्षों से सुनते आ रहे हैं।[1] यह एक सायकल है, क्रम है जो आज बहू है वह कल सास बनेगी और जो आज सास है वह कल बहू थी। यह बदलाव एक सामान्य प्रक्रिया है। आज की बहू अब पुरानी घूंघट वाली बहू नहीं है और उसके आधुनिक होने के पीछे नारी चेतना का ही हाथ है। आज वह अबला नहीं सबला बहू है। अब वह सास की गालियां व झिड़कियों का प्रतिकार करना जानती है। आज की सास भी बहू को लाने के पहले हवालात का विचार करती है। आज शिक्षा एवं मीडिया के कारण बहुएं अपना अधिकार समझती हैं।[2]

अब इसका दूसरा पहलू भी देखिये। आज से 50 साल पहले समाज के घर-परिवार बड़ी कुशलता एवं शांति से चलते थे। उस समय नारी चेतना शब्द पैदा नहीं हुआ था। क्या उस समय की नारियां असभ्य पिछड़ी एवं अमर्यादित थीं? जाहिर है उस समय पारिवारिक अनुशासन था। नारी तो सहज नारी है उसे खूंखार सास किसने बनाया। निश्चित ही समकालीन दंभ एवं तंग सामाजिक परिस्थितियों ने ही उसे ललिता पवार बनाया। लेकिन इसके विपरीत एक चित्र और उभर रहा है जो आज की बहुओं से संबंधित है। पहले की बहुएं परिवार केन्द्रित होती थीं और आज की बहू पति केन्द्रित होती है। इसमें कुछ अपवाद हो सकते हैं। शादी के बाद उसका प्रयास यही होता है कि कैसे वह पति को हेनपेक्ड बनाएं जल्दी से जल्दी परिवार से अलग होकर अपनी स्वतंत्र गृहस्थी बसाये। यह दृश्य पूरे भारत का है और इस बात की शिक्षा उसे मायके से भी दहेज में मिलती है। कैसे भी हो हमारी लडकी सुखी व संपन्न रहे।[3]

प्रश्न है बहू जैसे मायके में सबको अपना समझती है वैसे ससुराल में सबको अपना क्यों नहीं समझती? आज के शिक्षित सास-ससुर बहू को बेटी मानते हैं लेकिन बहू सास-ससुर को मां-बाप क्यों नहीं मानती। यदि ऐसा हो जाए तो टकराव की स्थिति कभी नहीं आ सकती। आज अधिकांश शिक्षित परिवारों में सास का नहीं बहू का वर्चस्व एवं प्रभुत्व देखा गया है। बहुओं का राज है सौजन्यता टीवी सीरियल्स एवं एकता कपूर की आज जो टीवी सीरियल्स में दिखाया या परोसा जा रहा है वह हिन्दुस्तान की आम व मध्यवर्गीय परिवारों की कहानी नहीं है यह तो मुम्बई-दिल्ली महानगरों के मुठ्ठी भर तथाकथित सॉफिस्टिकेटेड पूंजीपतियों की इस देश की पारिवारिक संस्कृति को प्रदूषित करने की नियोजित साजिश है जिसके तहत सासों और बहुओं को एक-दूसरे को सताने के नये-नये तरीके सिखाये जा रहे हैं। विवाहेत्तर संबंधों को ग्लोरीफाय किया जा रहा है। शायद यह भी नारी चेतना का एक कारण है।[4]

दुख इस बात का है कि यदि सास का विधवा होना या ससुर का विधुर होना होता हो तो उसकी तकलीफें और बढ़ जाती हैं। बेचारे सास-ससुर एक उपेक्षित जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं। हालांकि अपवाद स्वरूप अच्छे और बुरे परिवार हो सकते हैं। अंत में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि नारी चेतना तो हो किन्तु मर्यादा के साथ नारी को उसके अधिकारों के साथ-साथ दायित्वों कर्तव्यों का भी बोध होना आवश्यक है। अन्यथा यह पुरुषप्रधान समाज नारी के चेतनाशील किरदार को ज्यादा समय तक सहन नहीं करेगा या हो सकता है कि नारी चेतना के कारण महिलाओं में एक प्रकार का ईगोकॉप्लेक्स आ सकता है।[5] इसमें सूझबूझ और तालमेल

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 4, Issue 1, January 2017 |

की आवश्यकता है क्योंकि आज की नारी न तो महादेवी की कविता की नारी है और न ही शोभा डे के उपन्यासों की नारी है। उसे तो एक आर्दश गृहणी के रूप में अपने आपको सिद्ध करना चाहिये तभी नारी चेतना शब्द सार्थक होता है। यह दृश्य पूरे भारत का है न कि किसी समाज विशेष का।

स्त्रीवादी चेतना शब्द स्त्री, वाद और चेतना के मिलने से हुआ है। जिसका व्युत्पत्यार्थ इस प्रकार है-

स्त्री : व्युत्पति एवं अर्थ

स्त्री शब्द नारी का पर्यायवाची रूप है- नृ + अञ - डीन = स्त्री (1) नर का स्त्री रूप (2) विशेषत: वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा आदि गुणों की प्रधानता हो (3) युवती तथा वयस्क स्त्रियों की सामूहिक संज्ञा (4) धार्मिक क्षेत्र में तथा साधकों की परिभाषा में (क) प्रकृति (ख) माया (5) तीन गुरु वर्णों की एक संख्या। [1] अबला, वधु, प्रतीपदर्शिनी, वामा, वनिता, महिला। [2] स्त्री से भाव नारी के उस विविध रूप से है, जो लज्जा, श्रद्धा, सेवा आदि गुणों से युक्त होती है।[6]

वाद :

व्युत्पति एवं अर्थ वाद- (पु०) वद् + घञ = बातचीत, वाणी शब्द वचन, कथन, वर्णन निरूपण, वाद विवाद शाक्तार्थ खण्डन मण्डन। [3] तर्क- वितर्क, बहस, तत्वाज्ञों द्वारा निश्चित तत्व या सिद्धान्त, मुकदमा [4] कुछ कहना या बोलना, दलिल, अफवाह किंमवदन्ति। [5] वाद से तात्पर्य उस वाद विवाद से है जिसके द्वारा किसी भी बिन्दु के पक्ष- विपक्ष दोनों पहलुओं का विश्लेषण कर निष्कर्ष पर पहुँचा जाए।[7]

चेतना : व्युत्पति एवं अर्थ

चेतना शब्द चेत + ना (प्रत्य.) से बना है। जिसका समान्य अर्थ- बुद्धि, मनोवृति, ज्ञानात्मक मनोवृति, स्मृति, सुधि, याद, चेतनता, चैतन्य, संज्ञा होश। [6] अन्तभविना, विवेक जागृति। [7] ध्यान देना समझना। [8] उपदेश देना, चेतावनी देना, सावधान करना। [9] चेतना से भाव मनुष्य की उस मनोवृति से है, जिसके द्वारा वह सही गलत का निर्णय लेता है। अपने अधिकारों एवं कत्र्तव्यों के प्रति सजगता के साथ क्रियाशील रहता है।[8]

चेतना की परिभाषा

चेतना ऐसी स्थिति है जिसको अलग- अलग रूपों में व्याख्यायित एवं परिभाषित किया गया हैं। अन्यान्य कोशों में इसकी लाक्षणिकता को परिभाषित किया गया है- इन परिभाषाओं को निम्नलिखित कोटियों में बांटा जा सकता है-

भाव परक परिभाषा- चेतना मनुष्य की भावात्मक स्थिति है। मानक हिन्दी कोश के अनुसार "चेतना मन की वह वृति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आंतरिक घटनाओं (अनुभूतियों, भावों, विचारों आदि) और तत्वों एवं बातों का अनुभव या मान होता है।" [1]

वैशिष्ट्यपरक परिभाषा

चेतना वह तत्व है जो सजीव एवं निर्जीव के बीच के अंतर को व्यक्त करता है।

विश्व हिन्दी कोश के अनुसार "चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्यों की जीवन- क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं।[9] चेतना स्वयं को और अपने आस- पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों को मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है।" [2]

मूल्यांकन परक परिभाषा- चेतना द्वारा मनुष्य अपने कार्यों का मूल्यांकन करता है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार

"चेतना वह आंतरिक चेतना है जिसके द्वारा कर्ता को कर्म के उचित या अनुचित शुभ या अशुभ होने का बोध होता है या जो उसे शुभ करने के लिए उन्नत करती है।" [3]

स्मरण परक परिभाषा

चेतना पूर्व स्थितियों को स्मरण करने की शक्ति है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ अमरिकन के अनुसार "हमारे मन में बहुत कुछ ऐसा चल रहा होता है, जिसके बारे में हमें स्वयं को कोई जानकारी ही नहीं होती। एक व्यक्ति अपने विभिन्न- विभिन्न अनुभवों को याद कर सकता है, यह चेतना है।" [4]

मनोविज्ञानपरक परिभाषा

चेतना का अपना मनोवैज्ञानिक महत्व है इसके अन्तर्गत व्यक्ति के मन: स्थिति का अध्ययन किया जाता है। अंग्रेजी दार्शनिक जॉन लॉक की मनोवैज्ञानिक रूप से परिभाषा इस प्रकार है "चेतना से अभिप्राय है[10] कि वो सब कुछ जो कुछ एक व्यक्ति के मन में होता है।" [5]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 4, Issue 1, January 2017 |

विचार-विमर्श

आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श और नारी विमर्श ने साहित्य को समझने की केवल नई दृष्टि प्रदान नहीं की, बल्कि उसमें नये जीवन आदर्श भी प्रतिस्थापित किए। नारी विमर्श एक ऐसा विमर्श है, जिसने पूरे विश्व में हड़कम्प मचा दिया है। नारी विमर्श नारी की मुक्ति से संबद्ध एक विचारधारा है और नारी चूंकि समाज की धुरी के रूप में समाज की देखभाल सदियां से करती आ रही है, भारत में नारी को देवी, श्रद्धा, अबला जैसे संबोधनों से संबोधित करने की परंपरा बहुत पुराने समय से चली आ रही है। इस तरह के संबोधन अथवा विशेषण जोड़कर हमने उसे एक ओर पूजा की वस्तु बना दिया है तो दूसरी ओर अबला के रुप में उसे भोग्या एवं चल-संपत्ति बना दिया। हम यह भूल जाते हैं कि नारी मातृ – सत्ता का नाम है, जो हमें जन्म देती है, पालती है तथा योग्य बनाती है। यह कार्य नारी का मातृरूप ही करता है। आज विश्व के हर कोने में नारी के सुदृढ़ पगों की चाप सुनाई दे रही है।[11]

आज जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी ने अपना स्थान बनाया है। शिक्षा के क्षेत्र में सभी परीक्षाओं में लड़कियाँ अधिक आगे रहती हैं। आज आई.ए.एस., आई.आई.टी., चिकित्सा, प्रबंधन सभी क्षेत्रों में नारी पुरुषों से आगे हैं। नारी का नौकरी में होना आज एक आम बात है। पचास वर्ष पहले यह एक बड़ी घटना थी। शताब्दियों से पुरुष ही घर के भरण- पोषण का दायित्व संभालता रहा है। नारी को केवल यही सिखाया गया कि तुम अच्छी माँ बनो, अच्छी बहन और अच्छी पत्नी बनो। इसी में तुम्हारा जीवन सार्थक है। बाहर के जीवन से तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं, इसीलिए शिक्षा से भी तुम्हारा कोई वास्ता नहीं। यदि समाज को सुव्यवस्थित, सुगठित बनाना है और शांति पाना है तो नारी को समुचित सम्मानीय स्थान देना होगा, उसे मर्यादित करने के लिए प्रेम देना होगा और उसे स्वावलम्बी बनाने के लिए पूर्णतः शिक्षित करना होगा। हर कन्या का पुत्र की भांति पालन-पोषण करना होगा। इसलिए हमारे समाज की भी जिम्मेदारी बनती है कि हम लड़कियों को इस तरह शिक्षित करें कि वक्त आने पर वह रणचंड़ी बन दहेज के दानवों को उनके बुरे अंजाम तक पहुँचाएं और दूसरी जिम्मेदारी स्वयं नारी की है, जो हिम्मत से आसमान की बुलंदी को छुए जहाँ ये पंक्तियां साकार हो उठें-

''खुदी को कर बुलंद इतना

हर तदबीर से पहले

खुदा बंदे से खुद पूछे,

बता तेरी रजा क्या है?''[12]

और यह भी हर पल याद रखें कि हिम्मत रखने वालों की मदद स्वयं परमेश्वर करता है-

''फानूस बनके जिसकी

हिफाजत हवा करे,

वह समा क्या बुझे

जिसे रोशन खुदा करे''

जहाँ तक योग्यता का प्रश्न है, नारी ने कर्म के सभी क्षेत्रों में नाम अर्जित किया है। नारी के नौकरी में आने से अनेक लाभ हुए हैं। सबसे पहला लाभ, नारी का सम्मान बढ़ गया है। उसको एक स्वतंत्र व्यक्तित्व मिला है। अब परिवार को चलाने में वह बराबर की सहयोगिनी होती है। अब उसकी पहचान पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि जीवन संगिनी के रूप में विकसित होने लगी है। नारी और पुरुष दोनों समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। दोनों का समान रूप से शिक्षित होना आवश्यक है। स्त्री को अशिक्षित रखकर कोई समाज अपने कल्याण की बात नहीं सोच सकता। प्रसिद्ध दार्शनिक बर्नार्ड शॉ का कहना है-''देखकर साफ बताया जा सकता है। सुशिक्षित नारी समाज में फैले दुराचार, रुढ़िवाद और अनाचार को नष्ट करने में सहायक हो सकती है।''1 हिन्दी साहित्य में नारी चेतना का प्रभाव अधिकांशतः

साहित्य सर्जन के क्षेत्र में ही दिखलाई पड़ा। स्वाधीन भारत में नारी शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार ने नारी चेतना को आन्दोलन बनाने में अपनी भूमिका अदा की है। इस बीच साहित्य में नारी लेखकों की अपेक्षित संख्या सामने आई है। उनमें अपनी बात को साहस पूर्वक खुलकर कहने का भाव भी है और वे घरेलू जीवन के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन को ज्यादा खुलकर प्रस्तुत करने लगी हैं।[5]

आज की नारी स्वच्छन्द, स्वाभिमानी बन गयी है। बच्चे के लालन-पालन की जिम्मेदारी केवल नारी की ही समझी जाती है। लेकिन, वर्तमान समय में माता-पिता दोनों की नैतिक जिम्मेदारी बन गयी है। किसी भी मानसिकता का तीसरा आयाम शिक्षा ही है, जिससे स्त्री ने आज आसमान छू लिया है। स्त्री को स्त्री बनाने में पुरुषवादी मानसिकता का बड़ा योगदान है। आज अशिक्षित और शिक्षित नारियाँ- दोनों ही घर-बाहर अपनी दोहरी मूक भूमिका निभा रही हैं। अनपढ़ को घर के पिसने का मलाल भी नहीं क्योंकि ये औरतें घर के चूल्हों को जलाने के लिए घर से निकलती हैं। लेकिन, पढ़ी-लिखी औरतें आत्मनिर्भरता एवं आत्म सम्मान पाने की आकांक्षा से ही नौकरी करती हैं। ऐसे में इन आत्मनिर्भर और कामकाजी औरतों को 'घर-बाहर दोनों जगह पिस रही रही हैं' जैसी हतोत्साहित करने वाली उक्तियों से बचना होगा। परम्परा से चले आ रहे तीज-त्योहारों एवं शादी-विवाह पर लड़की को अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली लेन-देन की कुप्रथाओं को चुनौती देने के लिए आगे आना होगा और अपने प्रति चलने वाली दोगली मानसिकता को बदलना होगा।[8]

यदि हिन्दी साहित्य की बात करें तो मृदुला गर्ग का कथा-साहित्य भारतीय यौनाचार का भारतीय अभिलेख है। ऐसा लगता है कि पश्चिमी स्त्रीवादी चेतना से उन्होंने मुक्त यौन-विहार को चुन लिया है और उसे स्त्री मुक्ति का मुद्दा बनाया है। अन्य महिला स्त्री विमर्शकारों में शिवानी, ममता कालिया, सूर्यबाला, नमिता सिंह, सुनीता जैन, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, मंजुल भगत, शशिप्रभा शास्त्री, चन्द्रकिरण आदि उल्लेख्य हैं। 'मन्नू भण्डारी' का 'आपका बन्टी' शरद् चन्द्र की भावुकता पैदा नहीं करता, बल्कि पाठक को संवेदना के स्तर पर विक्षुब्ध करता है, मध्य वर्गीय अंहग्रस्त समाज की दुखती रग पर अंगुली रख देता है। पढ़े-लिखे समाज में पति-पत्नी के अपने-अपने अहम् की टकराहट स्वाभाविक है। इस टकराहट का फल है- शकुन और अजय का तलाक। इन दोनों के बीच उनका बेटा बंटी बुरी तरह से पिसता है। पिसते-पिसते वह पहचान से परे होता जाता है।[10] सारा उपन्यास तनावों से भरा हुआ है। यह तनाव अजय में कम है, शकुन में ज्यादा। पश्चिमी माँ का ममत्व चाहे मर गया हो, किन्तु भारतीय नारी का ममत्व अभी जीवित है, जिसे पाश्चात्य आधुनिकता धीरे-धीरे मार रही है। वास्तव में यह उपन्यास परिवार और स्त्री की जटिल समस्या का उपन्यास है, जो समाधान नहीं, प्रश्न उठाता है- प्रश्न भी कई स्तरों पर। वह नारीपन से मुक्ति का नारा लगाती है, वह लिखती हैं कि स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है अर्थात् स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके नारी होने की भावना के लिए तैयार किया जाता है। ''औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़कर औरत बनती है, कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियन्ता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबो-गरीब जीवन का निर्माण करती है।''2

'स्त्री-विमर्श' के अन्तर्गत कुछ कथाकारों ने ऐसी नारियों का चित्रण भी किया है, जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी होकर विवाह संस्था का निषेध करती हैं और पुरुष के साथ 'कम्पेनियन' बनकर रहना चाहती हैं, पत्नी बनकर नहीं। स्त्री को सदियों से चार दीवारों, चूल्हा-चक्की, घर-परिवार तथा बच्चों को संभालना..... तक सीमित रखा गया था। जब-जब उसने चौखट लांघने की कोशिश की, या पुरुष के अन्याय के विरुद्ध आवाज उठायी, तब-तब उसे प्रेम से या क्रोध से पुनः अँधेरी खोह में धकेल दिया गया। कभी उसे देवी बनाकर उसके पैरों को जकड़ा गया तो कभी उसके शरीर को आघात पहुँचाकर अनंत काल तक सहन करने के लिए छोड़ दिया गया था। निर्मला पुतुल की कविताओं में अभिव्यक्त आदिवासी स्त्री भी ऐसे ही दर्द को सहते हुए नजर आती हैः-

''अब औरत किसी आदमी के नाम से जुड़ी जमीन नहीं,

उसकी जिंदगी सिर्फ उसकी है, यही उसके जीवन का मूलमंत्र है

हथियार के बल पर और कब तक होगी सभ्यता की खरीद बिक्री,

असमानता की जटा उधेड़कर नारी खोज रही है समता का सूत,

अब वह समझ गयी है कि उसका जीवन सिर्फ उसी का है, उसी के लिए है।''3

आज की नारी स्वच्छंद, आत्मस्वाभिमानी बन गयी है। आज स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हरेक क्षेत्र में सहायता कर रही हैं। जिनमें उनके प्रवेश की कल्पना पुरुषों ने नहीं की थी। महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में शिक्षा के प्रसार और आर्थिक

आत्मनिर्भरता के कारण स्त्रियों में नई जागृति उत्पन्न हुई। आगे चलकर स्त्री लेखिकाओं ने इन कड़ियों को तोड़ना शुरु किया, किसी ने झटके से और किसी ने धीरे-धीरे। सुमन राजे कहती हैं-

''क्या तुम जानते हो, अपनी कल्पना में, किस तरह एक ही समय में

स्वयं को स्थापित और निर्वासित, करती है एक स्त्री?''4

आज महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया है। वह गाँव की मुखिया, सरपंच और ग्राम्याध्यक्ष भी बन गई हैं, परन्तु वास्तव में, उसके हाथ में सत्ता-अधिकार आए हैं क्या? पुरुष के वर्चस्व, उसकी दंभी वृत्ति और उसकी शरीर की ताकत से क्या वह मुकाबला कर पा रही है? आज समाज को ऐसी नारियों की आवश्यकता है, जो अपनी अन्तः शक्ति का प्रयोग पुरुष को पुरुषोत्तम बनाने के लिए करें, न कि पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करती हुई परिवार की उपेक्षा करें। आधुनिक शिक्षित युवक-युवतियाँ शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् नौकरी करना चाहते हैं। उनका उद्देश्य स्वयं को स्थापित करना होता है। अपनी दक्षता के आधार पर आत्मनिर्भर होने की प्रबल चेष्टा लिए हुए इस पीढ़ी की नारी हर हाल में संघर्ष के हर पहलू से लड़ लेती है और बड़ी समझदारी के साथ अपने हिस्से मिले हुए दुःख-दर्द को अपने अनुसार सुलझाना भी जानती है। इसके साथ ही साथ, उनको ऐसा जीवन साथी चाहिए, जो उनकी भावनाओं को समझे और उनके व्यक्तित्व का सम्मान भी करे।[9]

अन्ततः हम कह सकते हैं कि समाज के उज्जवल भविष्य की कामना के लिए हमें औरत के प्रति अपना नजरिया व व्यापार सब बदलने होंगे। उसे भी मान-सम्मन, स्नेह, अपनेपन की आवश्यकता है, वह समाज का अभिन्न हिस्सा है। उसमें भी अपार सामर्थ्य व संभावनाएँ हैं, जिससे समाज का विकास ही होगा। हमें सकारात्मक सोच को अपनाते हुए उसके अस्तित्व को स्वीकारना होगा। आज का युग बेसक नारी स्वतन्त्रता का युग है। लेकिन, हम कटु सत्यों को भी नकार नहीं सकते। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि नारी के परम्परागत स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आया। इन सब रुढ़ियों और कुप्रथाओं के बावजूद वह सभी चुनौतियों का सामना करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कर रही है। आज महिलाएँ मानवीय क्रियाकलापों के सभी क्षेत्रों में नई-नई उपलब्धियाँ अर्जित कर रही हैं। भारत में पहली महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, लोकसभा की पहली महिला स्पीकर मीरा कुमारी, अंतरिक्ष तक पहुंचने वाली कल्पना चावला इत्यादि उदाहरण यह दर्शाते हैं कि महिलाओं को न कवेल अपनी ताकत का अहसास हो गया, बल्कि समाज के अन्य वर्ग भी इस ताकत का लोहा मानने लगे हैं। शिक्षा के कारण नारी में जागरुकता आई है और अनेक क्षेत्रों में उसका सम्मान बढ़ा है। आज भारत में नारी-शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है, किन्तु आशाजनक अवश्य है। सरकार और समाज के प्रयत्नों से नारी-शिक्षा का अधिकाधिक विकास करके उसकी क्षमताओं को विकसित किया जाए तो आशातीत सफलता मिल सकती है।[7]

चित्रा मुद्गल हिन्दी जगत की प्रख्यात लेखिका एवं कथाकार है। आपको नारी मन की संवेदनाओं और उसके मनोविज्ञान की प्रवक्ता के रूप में माना जाता है। इनके कथा साहित्य में विलक्षणता , खुलापन , अनौपचारिकता सर्वत्र परिलक्षित होता है। नारी होने के कारण इनकी रचनाओं में प्रमुख रूप से नारी जीवन एवं समस्याओं का चित्रण मिलता है। चित्रा मुद्गल ने विभिन्न विधाओं में लेखन किया है , विधा केाई भी हो हर विधा के माध्यम से वह 'नारी' की नयी छवि को पाठक के सामने प्रस्तुत करती है। इनकी रचनाओं में नारी स्वतन्त्र एवं अपनी अस्मिता की तलाश करती हुई नजर आती है। स्त्री के साध्य और दुर्बलताओं को चित्रित करते हुए इन लेखिकाओं ने वास्तविक धरातल के विविध रूप प्रस्तुत किये। अनास्था और असन्तोष से उत्पन्न प्रतिरोध के नए स्वर दोनो लेखिकाओं की रचनात्मक पहचान है। स्त्री आधारित विषयों पर वर्षों से चिन्तन - मनन हो रहा है। फिर भी यह अपने - आप में एक नया विषय है। इसके विविध पहलुओं पर नव्य दृष्टिकोण से विमर्श की आवश्यकता है। अद्यतन साहित्य में स्त्री और स्त्रीवाद केन्द्र में है। अब तक अनेक आलोचकों ने स्त्री को केन्द्र में रखकर अपनी आलोचना की है , परन्तु उसका आधार स्त्री जीवन का कोई एक पक्ष ही रहा है।[5]

परिणाम

स्त्री और स्त्री जीवन ने वैदिक काल से आधुनिक और उत्तर - आधुनिक काल तक अनेक सोपानों का सफर किया है। समाज में स्त्री जीवन ने उतार - चढाव के सुखद - दुखद स्थितियों का स्वाद लिया है।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 4, Issue 1, January 2017 |

स्त्री शब्द की व्युत्पति, स्वरूप एवं महत्ता की व्याख्या करते हुए पतंजलि ने लिखा है- "शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन सबका समुच्य स्त्री है। स्त्री शब्द, स्त्री स्पर्श, स्त्री रूप, स्त्री रस इस लीलामयी जगत में अपनी अनिवर्चनीय सुषमा और अनुपम आकर्षण शक्ति के लिए सुविदित है।"

स्त्री के महत्त्व को वैदिक काल में सबने स्वीकार किया। वेद-पुराणों में सम्माननीय स्थान प्राप्त कर स्त्री, पुरूषों के सदृश्य पूजनीय एवं अनुकरणीय थी। पंडित श्रीराम आचार्य ने पुराणों के संदर्भ में स्त्री के महत्त्व को उदघाटित किया है- "वेद पुराणों में नारियों के लिए 'ग्ना' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द प्राय: देव पत्नियों के लिए हुआ। ब्राह्मण ग्रंथ में यह शब्द मानवीन्ति के लिए प्रयुक्त हुआ, जिसकी यास्क ने व्याख्या की है- 'ग्ना गच्छन्ति एना;' पुरूष ही उसके पास जाते हैं, सम्मान पूर्वक बातें करते हैं, उसे पुरूष अनुनय की आवश्यकता नहीं पडती।"

स्त्री वैदिक काल से ही समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत करती थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे महत्त्व दिया जाता था। अथर्ववेद के अनुसार- "विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का लक्ष्मी में, शक्ति दुर्गा में, इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी जगत जननी के नाम से सुशोभित किया गया है।" वेद-पुराण एवं धार्मिक ग्रंथों में स्त्री को उच्च स्थान दिये जाने के उपरान्त भी मध्य काल में स्त्री के जीवन में मूलभूत परिवर्तन आया। स्त्री शोभा एवं भोग-विलास की वस्तु बनकर रह गयी। अन्यान्य तरीके से उसका शोषण किया जाने लगा। स्त्री नरकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य हो गयी। भला हो राजाराम मोहन राय जैसे समाज सुधारकों का जिन्होंने नारी उत्थान का संकल्प लिया और कर दिखाया। पश्चिमी देशों में स्त्री सुधार और स्त्री-उत्थान के महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। परन्तु भारतीय संदर्भ में स्त्री के संबंध में चुनौतियां अलग तरह की है। अपने अधिकार एवं हक के लिए संघर्ष भी करना है, तो अपनी सभ्यता-संस्कृति, पारिवारिक एवं सामाजिक यहां तक कि व्यक्तिगत मूल्यों को जीवंत रखने की परम्परा का निर्वहन करते हुए। स्वतत्रं ता पूर्व संघर्षरत भारतीय जनमानस में स्त्री का यह रूप देखा जा सकता है। जहां वह स्वतत्रं ता के संघर्ष को स्वर दे रही है, परन्तु एक मर्यादा में। घर के अन्दर रहकर अपनी लेखनी से इस आवाज को बुलंद किया।[9]

स्वतंत्रता के बाद स्त्री अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत एवं जागरूक हुई है। परिवार, समाज, राजनीति, आर्थिक एवं धार्मिक सभी क्षेत्रों में उसकी क्रियाशीलता बढ़ी है। वह अपने कत्तव्यों के प्रति सजग है, परन्तु शोषित होकर नहीं, बल्कि जागरूक होकर। जिस पितृसत्तात्मक सत्ता द्वारा वह नियंत्रित होती रही हैं, उसके प्रति वह अधिक सतर्क हुई है। राजनीति ऐसा क्षेत्र है, जिसके द्वारा सबको अपने लिए संघर्ष करने का एक मार्ग मिल जाता है, स्त्री-वर्ग इस रहस्य को भलि-भांति जान गया है। यही कारण है कि आजादी के बाद ही इस दिशा मे स्त्री की क्रियाशीलता अधिक बढ़ गयी। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी इसके सशक्त उदाहरण थीं। जो भारत ही नहीं, अपितु विश्व की नेत्री बनने में सक्षम थीं। आज के संदर्भ में सोनिया गांधी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी, प्रतिभा पाल्लि बृंदा कारात आदि का नाम लिया जा सकता है। मायावती भारतीय राजनीति में एक ऐसा नाम है, जो दलित एवं गरीब परिवार से हो कर भी भारतीय राजनीति को प्रभावित किया है। समकालीन समय उत्तर आधुनिकता का है। इसमें स्त्रीवाद के स्वरूप को फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिल रहा है। यहां स्त्री नये-नये रूपों में प्रकट हो रही है। यदि कहा जाय कि उत्तर-आधुनिकता में स्त्री का एक नवीन अवतार हुआ है तो गलत न होगा। उत्तर-आधुनिकता में स्त्रीवाद एक जीवन-दर्शन के रूप में आया है और अपना-प्रचार कर रहा है। पाश्चात्य के साथ-साथ भारतीय साहित्य में इसे-प्रफुल्लित होने का पर्याप्त अवसर मिला है। हिन्दी साहित्य भी इसके प्रभाव से वंचित नहीं है। उत्तर-अधुनिकता में 'स्त्रीवाद' का स्वरूप क्या है? इस पर ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं-

"उत्तर-आधुनिकता की एक प्रवृत्ति 'स्त्रीवाद' है। दारिदा ने पाठ में अनुपस्थिति की तलाश की बात कही है। परम्परागत साहित्य में स्त्री का स्वर दबा तथा मर्द लेखन की स्थापना मिलती है। इस लिए स्त्रीवाद एक नये पाठ की वकालत करता है। पाश्चात्य स्त्रीवाद का हिन्दी साहित्य पर जाने-अनजाने प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार उत्तर-आधुनिक चिंतन में स्त्रीवादी विचारधारा को नये परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। पश्चिमी स्त्रीवाद समझने की चीज है, ग्रहण करने की चीज नहीं।"[1]

साहित्य में उत्तर-आधुनिकतावादी आलोचना के साथ ही विखण्डनवादी आलोचना भी आगे बढ़ी है। इसमें 'स्त्रीवाद' को केन्द्र में रखकर स्त्री शोषण, स्त्री मुक्ति, स्त्री अधिकार, स्त्री-पुरूष के आपसी भेद, आदि बिन्दुओं को उद्घाटित किया जा रहा है। अपनी सैद्धान्तिक मान्याताओं के अनुरूप विखण्डनवाद 'पाठ' को केन्द्र में रखता है। 'स्त्रीवाद' में वह स्त्री शरीर को केन्द्र में रखकर इस विषय पर अपनी मान्यताओं एवं धारणाओं को उद्घाटित करता है। इस संदर्भ में सत्यदेव मिश्र का मानना है कि-

"किसी भी पाठ को औरत की तरह पढ़ना, स्त्रीवाद समीक्षा का केन्द्र बिन्दू है। विखण्डन वाद औरतों के लिए लिंग भेदी दमन को सामने लाता है। अब तक समीक्षा मर्दवादी था। समीक्षा में अब तक पुरूषों की स्थापना का प्रयास रहा था अब स्त्री की स्थापना का प्रयास होने लगा है।"[2]

निश्चित रूप से स्त्री और स्त्रीवादी चेतना पर आरंभ से लेकर अब तक। वैदिक काल से लेकर उत्तर - आधुनिक काल तक। पाश्चात्य से लेकर प्राच्य तक। सभी बिन्दुओं पर गहना से अध्ययन किया जाय, विवेचन - विश्लेषण किया जाय तो अन्ततः निष्कर्ष निकलता है कि स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नया विषय है। यदि स्त्री की पूर्व एवं वर्तमान स्थिति, उत्थान - पतन आदि विषयों को केन्द्र में रखकर विचार - विमर्श किया जाए तो निश्चित रूप से स्त्रीवादी चेतना अपने आप में एक नव्य विमर्श है।[11]

डॉ. अर्चना (2013) मिश्राः चित्रा साहित्य की सभी विधाओं में स्त्री साहित्यकारों का योगदान निरन्तर बढ़ रहा है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में तो कुछ ऐसी स्त्री रचनाकार आई हैं, जिनके साहित्य पर निरन्तर चर्चा - परिचर्चा एवं संगोष्ठियों का आयोजन हो रहा है, परन्तु आलोचना के क्षेत्र में इनका योगदान अभी कम है। इस संदर्भ में ओम प्रकाश शर्मा लिखते हैं - "भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक नारी होने के नाते साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के अतं र्बाहाय जीवनानुभवों को प्रस्तुत किया। वहीं नारी मन की अटल गहराईयों में उतर कर उसका सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अंकन भी किया है। नारीत्व की पुरुष मर्यादित सीमाओं की कहानी, उपन्यास, कविता आदि के माध्यम से अतिक्रमण कर नये धरातल की नींव रखी है। अपने स्त्रीत्व के प्रति जागरूक रचनाकार को निश्चय ही यह उसके आत्म सम्मान के खिलाफ लगता होगा। अतः उम्मीद की जानी चाहिए कि आलोचना के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी। "

आज स्त्री विमर्श पर अनेक सवाल उठाए जा रहे हैं।[12]

चित्रा मुद्गलः (2014) पुरुष समर्थकों को इस बात की चिन्ता है कि कहीं स्त्री विमर्श के बहाने हमारा अधिकार तो नहीं छीना जाएगा, उनकी यह चिन्ता निरर्थक है, क्यों कि स्त्री विमर्श के बहाने स्त्री अपने स्वत्व को पाना चाहती है। उसे किसी की हार जीत से कोई मतलब नहीं है। वह तो बस समाज में सम्मान्ति जीवन जीना चाहती है। इस संदर्भ में राकेश कुमार - प्रसिद्ध लेखिका महादेवी वर्मा की उक्तियों का उल्लेख करते हैं - "हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए, न किसी पर प्रभुता, केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। "[2] अद्यतन परिवेश में स्त्री चिन्तन और लेखन में अत्यधिक परिवर्तन आया है। स्त्री लेखिकाएँ पुरानी परम्पराओं से निकल कर आधुनिक यथार्थ को अपने साहित्य का विषय बना रही हैं। अनामिका का कहना है - "पहले जब स्त्रियाँ कलम उठाती भी थीं, उनमें वह होता था जिसे मनोवैज्ञानिक 'पुअर लिजा काप्लेक्स' कहते हैं - बेचारी दुःख की मारी वाला भाव। आधुनिक स्त्री लेखन आत्म - विश्लेषणपरक है, और उसके 'मैं' भाव का विस्तार इतना बढ़ गया है कि 'सारी दुनिया' समा गई है, खुद से अकेले में रुबरु हो कर पूछती तो है - प्रेम गली की तरह मेरी अस्मिता कहीं इतनी 'सांकरी' तो नहीं हुई जाती 'जामै में दुई न समाहि"। [3]

निष्कर्ष

स्नेह मोहनीषः (2015) मानव का सबसे बड़ा आकर्षण केन्द्र मानव ही हैं और कारण यह है कि उसकी सभी अभिव्यक्तियाँ और कार्य मानव से संबंधित हैं। समूचा साहित्य मानवीयभावों, अनुभवो और संचारीभावों अर्थात भावों, मनोभावों और मनोविकारों से प्रभावित होता हैं। साहित्य के अध्ययन के साथ - साथ साहित्यकार का व्यक्तित्व भी उभरकर हमारे सामने आ जाता हैं। साहित्यकार अपनी प्रगति में इस प्रकार व्याप्त रहता है - जैसे षरीर में आत्मा और नभमंडल में वायु। यही कारण हैं कि उसके व्यक्तित्व के रूप - प्रतिरूप साहित्यकार द्वारा रचित साहित्य में यत्र - तत्र बिखरे रहते हैं। वस्तुतः कलाकार का व्यक्तित्व, उसका परिचय उसका विष्वास और उसकी प्रतिबद्धता सभी कुछ उसकी कला होती हैं। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके अन्तःभाव - विचारों की संप्रेषणीयता का प्रत्यक्ष आधार होता हैं और मुखर व्यक्तित्व स्वतः ही अन्तस के गहन गंभीर विचारधारा का नि दर्शन करा देता हैं। अतः व्यक्तित्व दर्शन से साहित्यकार के भाव - विचार, ज्ञान - विज्ञान और उसके वार्तालाप से उसके दार्शनिक ज्ञान का जीवनवृत उसके व्यक्तित्व निर्माण का एक बाह्य उपादान होता है और जीवन दर्शन अभ्यन्तर उपादान। वैसे तो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्रण करना लगभग असंभव ही हैं। फिर भी प्रतिभाषाली व्यक्ति के

व्यक्तित्व का चित्रण करना तो असंभव ही हैं। फिर भी कार्य संपन्न करने के प्रयास तो किये जाते है और प्रयास करना ही जीवन धर्म हैं। प्रतिभा जन्मजात अथवा अर्जित हो सकती हैं परंतु आकर्षक और रोचक शब्दों के रूप में व्यक्त करने की क्षमता बिना अध्ययन , मनन , चिंतन और अध्यवसाय के साथ - साथ लगन के सुयोग के बिना संभव नहीं हो सकती हैं।[11]

करुणाशंकर उपध्यायः (2015) इस दृष्टि से आलोच्य साहित्यकत्र्री चित्रा मुद्गल के जीवन के तथ्यपरक पहलुओं को उदघाटन करने का मेरा यह छोटा प्रयास हैं। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका चित्रा मुद्गल ने अपनी रचना और रचनाधर्म व्यक्तित्व से भारत के साथ - साथ विष्व स्तर पर अपनी अलग पहचान बनाई हैं। जहाँ एक ओर इनके व्यक्त्वि में भारतीयता समाज , संस्कृति और कलात्मक अभिव्यक्ति का अदभूत संयोग हुआ हैं। वही दूसरी ओर अनके साहित्य में अभाव ग्रस्त जीवन व्यतीत करने वाले मजदूरों के प्रति सविषेष सहानुभूति हैं। नृत्य में अभिरूचि होने के कारण इनके व्यक्तित्व में अधिक विचार आया है। इनके साहित्य की महत्ता और उपयोगिता उनके साहित्य पर प्राप्त अनेकानेक मान - सम्मान और पुरस्कारों से लगाई जा सकती हैं। कुप्रथाओं , कुप्रवृत्तियों से ग्रस्त एवं भ्रष्ट समाज से संघर्ष करती हुई चित्रा मुद्गल ने अपने साहित्य में सदैव भारतीय संस्कृतिक और मान्यताओं को ही महत्व दिया हैं। इनके कथा साहित्य का सृजन उस यथार्थ भूमि पर हुआ हैं। जिस पर चलते हुए लेखिका को अनेक रूपों में संघर्ष करना पडा हैं। चित्रा मुद्गल यथार्थोन्मुखी लेखिका के साथ - साथ भारतीय संस्कृति की चिन्तक भी हैं। इसकी झलक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में झलकती हैं। वे अत्यंत संवेदनषील लेखिका हैं।

कथा साहित्य में स्त्री चेतना के विकास के साथ - साथ उसके स्वरूप और प्रयास में परिवर्तन आया है। जहाँ कथा के स्वरूप में स्त्री चेतना का विकास कर समाजसुधारकों ने चेतना के विकास में तमाम प्रयास किये वहीं स्त्री ने भी लेखन से लेकर अपनी अस्मिता तक की रक्षा की। पुरूषों के साथ समानता का दृष्टिकोण बनाते हुए खुद को ‘ व्यक्ति ’ के रूप में स्थापित किया। वह कोई भी सीमा हो खुद को आगे बढ़ाने में सक्षम और विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का हौसला रखते हुए लेखन से लेकर चेतना के नये आयाम का निर्माण किया है।[12]

संदर्भ

1. डॉ . अर्चना मिश्राःचित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में चिंतन , पृ - 18
2. चित्रा मुद्गलः ‘ मेरे साक्षात्कार ’, पृ - 177
3. चित्रामुद्गलः ‘ जिनावर ’ भूमिका पृ ‘7
4. चित्रा मुद्गलः ‘ लक्कड़बघ्घा ’ , पृ - 7’
5. चित्रा मुद्गलः ‘ जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है ’, पृ - 4
6. चित्रा मुद्गलः ‘ लक्कड़बघ्घा ’ , पृ - 10
7. चित्रा मुद्गलः ‘ जगदंबा बाबू गाँव आ रहे है ’, पृ - 8
8. स्नेह मोहनीषः जूही के फूलों सी हँसी वाली सोनपरी लोकायतः 31 जुलाई 2007 , पृ . 38
9. करुणाशंकर उपध्यायः ‘ आवां ’ विमर्श , पृ - 268
10. कल्पना पाटीलः चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य , पृ - 20
11. चित्रा मुद्गल के साथ गोरखनाथ तिवारी की भेटवार्ता , संकल्प संपादक , पृ - 89
12. उर्मिला शिरीश : में साक्षात्कार , पृ - 139